की सटीक रचना नवपाद प्रकरण तथा हेमचन्द्रसूरि का योगशास्त्र प्रमुख है। ये सभी ग्रंथ गुजराती एवं हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित मिलते हैं। इसके अलावा 20वीं सदी में भी श्रावकों के लिए उपयोगी ग्रंथों की रचना की गयी है। जिनमें गृहस्थधर्म तथा श्रावकधर्म उत्तम रचनाएँ हैं। गृहस्थ धर्म के लेखक आचार्य जवाहरलाल जी म० तथा श्रावक धर्म की लेखिका महासती उज्ज्वलकुंवर जी म० हैं।

(ब) दिगम्बर आम्नाय में मान्य रचनाएँ

श्वेतामबर आम्नाय की अपेक्षा दिगम्बर आम्नाय में श्रावकों वा उपासकों के आचार-विचार पर अधिक चिन्तन किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। कारण है विद्वान् आचार्यों द्वारा अपनी कृतियों में श्रावकाचार को महत्ता देना तथा श्रावकाचार परक स्वतन्त्र रचनाओं का आधिक्य विशेष हैं। यहाँ इस विषयक रचनाओं की विशेषताओं का अध्ययन करते हैं :-

1. चारित्तपाहुड (चारित्र प्राभृत)

चारित्र पाहुड आचार शास्त्र है। जिसमें 44 गाथाएँ हैं। इसकी 6 गाथाओं (2.-25 तक) में श्रावकधर्म पर चिन्तन किया गया है। पहले संयमाचरण गृहस्थों के दो बतलाकर कहा गया है कि सागारसंयमाचरण गृहस्थों को होता है। पुनः ग्यारह प्रतिमाओं के नाम गिनाए गये हैं। सागारसंयमाचरण को फिर पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप माना गया है। इन्हीं का आगे वर्णन कर सल्लेखना को चौथा शिक्षाव्रत स्वीकार किया गया है।

चारित्र पाहुड के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं जिनका दिगम्बर आम्नाय में सर्वोपरि स्थान है जो निम्न मंगलपद्य से भी स्पष्ट होता है-

मंगलं भगवान् वीरों मंगल गौतमोगणी।
मंगलं कुन्द कुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।

इतिहास उपलब्ध शिलालेखों के आधार पर आपका समय विक्रम की प्रथम शताब्दी मानते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने 84 पाहुडों की रचना की थी जिनमें से 20 उपलब्ध हैं। सभी शौरसेनी प्राकृत भाषा में छन्दोबद्ध है। चारित्रपाहुड इन्हीं में से एक है। चारित्रपाहुड पर श्रुतसागर की टीका भी मिलती है।

षट् प्राभृतादिसंग्रह में यह ग्रंथ माणिकचंद ग्रंथमाला से प्रकाशित है। श्री महावीर जी आदि कुछ एक अन्य स्थलों से भी उक्त रचना स्वतंत्र रूप से सानुवाद प्रकाशित है।

2. रयणसार

प्रकृत ग्रंथ के लेखक भी आचार्य कुन्दकुन्द हैं। रयण का अर्थ रत्न है। रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यक्चारित्र में सारभूत रत्न सम्यक्दर्शन की है। सम्यक्दर्शन की उपलब्धि के साथ ही सम्यक्ज्ञान की भी प्राप्ति हो जाती है। सम्यक्चारित्र के बल पर ही उक्त दोनों सम्यक्दर्शन एवं सम्यक्ज्ञान का लाभ होता है। रयणसार में उक्त तीनों का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन किया गया है। रयणसार में कुल 167 गाथाएँ हैं। इनमें से 72 गाथाओं श्रावक धर्म का वर्णन किया गया है।

यह ग्रंथ भी माणिकचन्द ग्रंथ माला से प्रकाशित है। सन् 1907 में यह मराठी अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हुई थी। बाद में यह हिन्दी व्याख्या के साथ भी अन्यस्थलों से प्रकाशित है, जिसमें वीर निर्वाण महोत्सव पर प्रकाशित और डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित रयणसार को भुलाया नहीं जा सकता, जो उत्तम प्रकाशन एवं संस्करण है।

3. रत्नकरण्डश्रावकाचार

दूसरी सदी के आचार्य समन्तभद्रस्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार के रचयिता है। आप तार्किक विद्वान् हैं। आपने ही अनेकान्तसिद्धान्त का प्रथम प्रतिपादन करते हुए आप्त (अरिहन्त) की मीमांसा की है, जिससे जैनदर्शन को दर्शन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान मिल सका। आपने वृहत्स्वयंभूस्तोत्र, गन्धहस्तिभाष्य तथा युक्त्यनुशासन जैसे गहन चिन्तन पूर्ण दार्शनिक ग्रंथों की रचना भी की है।

श्रावकधर्म पर इतना सुन्दर और परिष्कृत विवेचन करने वाला सचमुच रत्नों का करण्ड (पिटारा) ही है-रत्नकरण्डश्रावकाचार। प्रकृत ग्रंथ में 150 गाथाएँ हैं जिनमें धर्म की परिभाषा, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप, आठ अंगों और तीन मूढ़ताओं का लक्षण, मदों का स्वरूप, सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र का लक्षण, अनुयोगों का स्वरूप, श्रावक के द्वादश व्रत तथा ग्यारह प्रतिमाओं का परिमार्जित विवेचन किया गया है। अर्हत्पूजन का वैयावृत्त्य के अन्तर्गत वर्णन करना रत्नकरण्डश्रावकाचार की अपनी विशेषता है। स्वामिसमन्तभद्र ने वैयावृत्त्य को संल्लेखना के स्थान पर शिक्षाव्रत बतलाया है। यही यहाँ विशेष है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार की अन्य विशेषता सर्वप्रथम श्रावकों के आठ मूलगुणों का प्रकाशन करना है। स्वामिसमन्भद्र ने पाँच स्थूल पापों के साथ मद्य, मांस और मधु के परित्याग को अष्टमूलगुण माना है। इस प्रकार यह मौलिक रचना है, जो श्रावक धर्म पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालती है।

4. स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

विक्रम की दूसरी तीसरी शती के बाल ब्रह्मचारी आचार्य स्वामिकार्तिकेय ने स्वनामधन्य कृति-स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा की रचना की है, जिसमें द्वादश अनुप्रेक्षाओं एवं वैराग्यपरक भावनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। स्वामिकार्तिकेय ने धर्मभावना के अन्तर्गत श्रावकधर्म का विवेचन किया है, जो अपने में अति रमणीय एवं मनोज्ञ है।

जिनोपदिष्ट धर्म के द्विविध भेद बतलाकर परिग्रहधारी श्रावक के बारह भेद कहे गए हैं। यहाँ बतलाया गया है कि श्रावक को व्रत ग्रहण करने से पूर्व सम्यग्दर्शन का धारण करना अनिवार्य है। अत: उसे पहले समझाकर फिर 85 गाथाओं में आचार्य ने श्रावकधर्म के व्रतों का स्वरूप स्पष्ट किया है।

5. रत्नमाला

यह लघुकाय रचना है, जिसमें रत्नत्रय धर्म की महत्ता दर्शाते हुए प्रमुख रूप से श्रावकधर्म के द्वादशव्रतों का विवेचन किया गया है। व्रतों में लगने वाले अतिचारों, आठ मूलगुणों तथा दान एवं सल्लेखना विधि आदि पर यह कृति अच्छा प्रकाश डालती है।

रत्नमाला के रचनाकार आचार्य शिवकोटि है जो विद्वानों की दृष्टि से आचार्य समन्तभद्र स्वामी के समकालीन थे। आचार्य शिवकोटि ने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही समन्तभद्र स्वामी का स्मरण किया है। इससे लगता है कि आचार्य शिवकोटि स्वामी समन्तभद्र के शिष्य थे।

6. पद्मचरित या पद्मपुराण

पद्म अर्थात् कमल और जिनके चरणतल में चिह्न के रूप में यह विद्यमान था, ऐसे श्रीराम ही पद्म नाम से जैनदर्शन में चरितार्थ है। इस कारण पद्मचरित और कुछ नहीं जैन रामायण है, जिसके चौदहवें पर्व में श्रावक धर्म का वर्णन किया गया है।

उक्त जैन रामायण (पद्मपुराण) के लेखक आचार्य रविषेण हैं जिनका समय विद्वानों ने आठवीं सदी बतलाया है। आचार्य रविषेण ने अपनी रचना पद्मचरित में अहिंसादि पांच अणुव्रत, अनर्थदण्ड विरति, दिग्व्रत और भोगोपभोग संख्यान इन तीन को गुणव्रत तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथि संविभाग एवं सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहकर बारह व्रतों का प्रतिपादन किया है और अन्त में उन्होंने मद्य, मांस, मधु, द्यूत, रात्रि भोजन तथा वेश्यागमन के त्याग की श्रावक को प्रेरणा दी है।

इस प्रकार पद्मचरित प्रतिपादित श्रावक धर्म की महत्ता स्वत: सिद्ध है।

7. वरांगचरित

वरांगचरित महाकाव्य के रचयिता आठवीं-नवमीं शताब्दी के मध्यवर्ती काल में जन्में आचार्य जयसिंह नन्दि हैं। इस महाकाव्य के 15वें सर्ग में श्रावकधर्म का सुन्दर शैली में व्याख्यान किया गया है। गृहस्थों को दु:खों से छूटने के लिए व्रत, शील, तप, दान, संयम और अर्हत्पूजन का विधान करते हुए दयामयी धर्म से सुख की प्राप्ति बतलायी गयी है।

8. हरिवंशपुराण

आठवीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य जिनसेन प्रथम ने अपनी रचना हरिवंशपुराण के 58वें सर्ग में तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय के आधार पर श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया है। फिर भी हरिवंशपुराण में वर्णित श्रावकाचार की अपनी विशेषता यह है। कि भोगोपभोगपरिमाण के लिए मद्य, मांस, मधु, द्यूत, वेश्यासेवन और रात्रिभोजन का त्याग का विधान किया गया है। जो अवश्य ही उपासक को अपने जीवन में अपनाना चाहिए।

9. महापुराण

नवमी सदी के आचार्य जिनसेन द्वितीय जो सिद्धान्त ग्रंथों के महान् वेत्ता भी थे, ने महापुराण की रचना की है। इसी महापुराण के 39वें पर्व में श्रावकों के लिए आचरणीय धर्म का विवेचन मिलता है।

इज्या (पूजा) वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का स्वरूप बतलाते हुए त्रिविध-गर्भान्वयी, दीक्षान्वयी एवं कर्त्रन्वयी क्रियाओं को स्पष्ट किया गया है। व्रतों का धारण करना दीक्षा है। व्रत-अणुव्रत और महाव्रत रूप से दो प्रकार का होता है। व्रत धारण के अभिमुख पुरुष की क्रियाओं का नाम दीक्षान्वयी क्रिया है। अतिनिकट भव्य पुरुष को प्राप्त होने वाली कर्त्रन्वयी क्रियाएं कहलाती हैं। जिनके अन्तर्गत सज्जातित्व , सद्गृहित्व, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रत्व, साम्राज्य, आर्हन्त्य और निवृत्ति रूप परमस्थानों का विवेचन आता है। इसके अलावा यहां दोषी श्रावक की शुद्धि का भी विधान किया गया है। पक्षचर्या और साधन से हिंसादि दोषों की शुद्धि हो जाती है। पक्ष हिंसादि पापों की निवृत्ति है, जबकि अहिंसादि व्रतों को धारण करना चर्या है। और जीवनान्त समाधिमरण स्वीकार करना साधन है।

इस प्रकार आचार्य जिनसेन ने कुछ अन्यों से भिन्न श्रावकधर्म पर प्रकाश डाला है।

10. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय

मुख्यतया यह ग्रंथ श्रावक धर्माचरण की दृष्टि से ही रचा गया है। इसके रचयिता दसवीं शताब्दी के आचार्य अमृतचन्द्र सूरि है। आप अपने समय के प्रखर प्रतिभासम्पन्न, बहुश्रुतधर तथा अनेकों दार्शनिक ग्रंथों के गम्भीर टीकाकार है।

पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आपकी मौलिक कृति है, जिसमें रत्नत्रयसम्यकग्दर्शन-ज्ञान एवं चरित्र को विस्तार से समझाते हुए श्रावक को आचरणीय द्वादश व्रत, सप्तशील, सल्लेखना और उनमें लगने वाले दोषों को प्राञ्जल भाषा में स्पष्ट किया गया है।

यह चिदात्मा उद्यम के साथ मुनिपद को धारण कर रत्नत्रय के अवलम्बन से परमात्मा बन जाता है और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस तरह चार पुरुषार्थों में प्रधान मोक्ष पुरुषार्थ की प्रतिपादन करने से इस रचना के नाम की सार्थकता स्वत: सिद्ध है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में चर्चित विविधनयगहन, हिंसा-अहिंसा के विवेचन को आचार्य हरिभद्रसूरि की कृति श्रावक प्रज्ञप्ति में वर्णित हिंसा-अहिंसा विषय के साथ मिलान कर देखते हैं। तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय पर श्रावक प्रज्ञप्ति का स्पष्ट प्रभाव है।

11. उपासकाध्ययन

प्रसिद्ध एवं महान् ग्रंथ यशस्तिलकचम्पू के छठे, सातवें और आठवं आश्वास में श्रावकधर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिस कारण स्वयं रचनाकार आचार्य सोमदेवसूरि ने इन आश्वासों का नाम उपासकाध्ययन रखा है। आचार्य सोमदेवसूरि का समय विद्वानों ने ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है।

प्रवृत्तिरूप गृहस्थ धर्म के अन्तर्गत आचार्य सोमदेव ने अन्य धर्मों में मान्य मुक्ति के स्वरूप को समझाते हुए अकाट्य युक्तियों से उनका समीक्षण कर जैनाभिमत के अनुसार मोक्ष के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। आपने आप्त, आगम और पदार्थों के त्रिमूढ़तादि दोषों से विमुक्त और आठ अंगों से सम्पन्न श्रद्धान को सम्यक्त्व बतलाया गया है।

आचार्य सोमदेवसूरि के मतानुसार श्रावक के आठ मूलगुण-मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलों का त्याग है। इसके बाद श्रावक को धारण करने योग्य

अहिंसादि बारह उत्तर गुणों के स्वरूप पर और उनमें पुरुषों के चारित्रिक गुणों पर उपासकाध्ययन में प्रकाश डाला गया है।

श्रावक धर्म के प्रतिपादन में आचार्य सोमदेवसूरि की विशेषता को भुलाया नहीं जा सकता। जहाँ एक और आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अपनी कृति रत्नकरण्डश्रावकाचार में चतुर्थ शिक्षाव्रत वैयावृत्त्य में आप्तसेवा या देवपूजा को रखा है, वहीं दूसरी ओर उपासकाध्ययन में सोमदेव ने देवपूजा को सामायिक शिक्षाव्रत का अंग बतलाया है। यहाँ आचार्य सोमदेव वैदिक दर्शन के त्रिसंध्यावन्दन से प्रभावित लगते हैं। इस प्रकार श्रावक धर्म पतिपादन में सोमदेव कृत उपासकाध्ययन की अपनी विशिष्ट भूमिका है।

12. अमितगति श्रावकाचार

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य अमितगति ने विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है जिनमें सुभाषितरत्नसन्दोह, धर्मपरीक्षा, संस्कृत पञ्चसंग्रह, आराधना और भावना द्वात्रिंशिका प्रमुख हैं। इसके अलावा सार्थद्वय प्रज्ञप्ति की रचना भी आचार्य अमितगति के द्वारा ही मानी जाती है। आचार्य अमितगति का समय विद्वानों ने विक्रम की ग्याहरवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध बतलाया है।

आचार्य अमितगति ने श्रावकधर्म पर भी एक मौलिक ग्रंथ की रचना की है, जो अमितगति श्रावकाचार के नाम से प्रसिद्ध है। इसके 14 परिच्छेदों में श्रावक धर्म का विस्तृत विवेचन किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में धर्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए क्रमश: सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व का हिताहितत्व सात तत्त्व, आत्मास्तित्व सिद्धि, ईश्वर-सृष्टिकर्तृत्व खण्डन, शील, तप, द्वादश व्रत, ग्यारह प्रतिमाओं, बारह भावनाओं, दान, पूजा, अभक्ष्यत्याग, समाधिमरण तथा सामायिक आदि पर षट् आवश्यकों का वर्णन किया गया है।

अमितगति श्रावकाचार की विशेषता है-निदान के प्रशस्त एवं अप्रशस्त भेद, उपवास की विविधता, आवश्यकों का स्थान, आसन, मुद्रा एवं काल आदि का वर्णन करना।

13. चारित्रसारगत श्रावकाचार

दशवीं विक्रम शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान वीरमार्तण्ड एवं सम्यक्त्वरत्नाकर आदि अनेक उपाधियों से विभूषित, कन्नड़ी मातृभाषी, संस्कृत भाषा में पारंगत विद्वान् आचार्य चामुण्डराय त्रिषष्टिपुराण आदि ग्रंथों के रचयिता हैं।

आचार्य चामुण्डराय ने अनेक पूर्ववर्ती विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित श्रावकधर्म का मन्थन कर संस्कृतगद्य में चारित्रसार की रचना की, जिसमें ग्यारह प्रतिमाओं को आधार बनाकर सम्यक्त्व की महत्ता बतलाते हुए श्रावक को आचरणीय धर्म का सरल शैली में मनोज्ञ वर्णन किया है। व्रती श्रावक को द्यूतादि व्यसनों से मुक्त और सम्यग्दर्शन के आठ अंगों से सम्पन्न होना चाहिए।

चारित्रसारकार ने जहाँ गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत को शीलसप्तक कहा है, वहीं उन्होंने पञ्चाणुव्रतों में रात्रि भोजन त्याग को शामिल कर छह अणुव्रतों का उल्लेख किया है। चारित्रसार पर तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, महापुराण तथा सोमदेव उपासकाध्ययन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

14. वसुनन्दि श्रावकाचार

आचार धर्म एवं कर्म सिद्धान्त ग्रंथों के प्रणेता आचार्य वसुनन्दि बारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे। आपने भी दार्शनिक श्रावक को सप्तव्यसनों का त्याग आवश्यक बतलाकर उनके दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है। इसके अलावा आचार्य ने ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया है, जिसका प्रेरक श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र है।

आचार्य वसुनन्दि ने अपनी रचना में श्रावकों के लिए अष्ट द्रव्यों से जिन पूजन करना चाहिए, इसके साथ ही छत्र, चमर और घण्ट आदि दान का महाफल भी उन्होंने बतलाया है। भावपूजन के अन्तर्गत पिण्डस्थ आदि ध्यानों ध्यानों का यथास्थान वर्णन कर श्रावकों को विनय एवं वैयावृत्त्य तप करने की प्रेरणा दी है।

15. सावयधम्मदोहा

सावयधम्मदोहा विक्रम की दशवीं शती की रचना है। इसके रचनाकार देवसेन हैं या लक्ष्मीचन्द्र अथवा आचार्य योगिन्द्र कारण कि प्राप्त प्रतियों की प्रशस्तियों में उक्त नाम मिलते हैं। ग्रंथकार जो भी हो, दोहात्मक शैली में श्रावकधर्म का प्रकाशन करने वाला यह उत्तम ग्रंथ है।

आचार्य वसुनन्दि की तरह इसमें एक-एक दोहे में ग्यारह प्रतिमाओं वर्णन पाया जाता है। अष्ट मूल पालन, अगालित जलपान निषेध, पात्र-कुपात्रादि दान का फल, उपवास का महात्म्य, इन्द्रिय संयम, कर्मबन्ध निरूपण और जिनपूजन करने की श्रावकों को प्रेरणा दी गई है। जिनमंदिर एवं जिनबिम्बनिर्माण की प्रेरणा पर प्रकाश डालते हुए विद्वान् लेखक ने अर्ह आदि मंत्रों के जप ध्यान का ओजस्वी वर्णन किया है।

16. सागारधर्मामृत

धर्म, न्यायशास्त्र, वैद्यक, अध्यात्मक, पूजनविधान एवं विशाल काव्य साहित्य के सर्जक पण्डित प्रवर आचार्य आशाधर सागार धर्मामृत के रचयिता हैं। आपका विद्वानों ने तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है। पण्डित आशाधार जी ने लगभग 19 ग्रंथों की रचना की है, जिनमें मौलिक और टीका ग्रंथ अधिक है।

आचार्य आशाधर ने सागारधर्मामृत की रचना में अपने से पूर्ववर्ती प्रायः सभी आचार्यों की कृतियों का मन्थन किया है। अतः आप पर आचार्य हरिभद्रसूरि, सोमदेव, हेमचन्द्र तथा वसुनन्दि का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

सागारधर्मामृत के प्रारम्भ में आचार्य ने सागर का लक्षण, उसके गुण, तथा सागर धर्म ग्रहण करने का अधिकारी कौन है ? पर प्रकाश डालते हुए, धर्म सुख, श्रावक को करणीय षट्कर्म, पक्ष चर्या एवं साधन का स्वरूप बतलाकार ग्यारह प्रतिमाओं की महत्ता प्रतिपादित की है।

अष्टमूल, मूर्तिदर्शन, जिनदेव-शास्त्र-गुरुपूजन, उसकी महानता, गुरुपासना, दान का माहात्म्य, अतिथि सम्मान, सप्त व्यसनत्याग तथा द्वादश व्रतों के स्वरूप एवं महत्ता का प्रकाशन सागारधर्मामृत के द्वितीय अध्याय का विषय है। नैष्ठिक श्रावक को व्यसन मुक्त होना तथा मद्य, मधु मांसादि आठ मूल गुणों का पालन करना आवश्यक है।

सागर धर्मामृत के 4-5 अध्यायों में व्रत प्रतिमा की महत्ता को दर्शाते हुए अणुव्रतों एवं तथा गुणव्रतों एवं शिक्षाव्रतों को विस्तार से स्पष्ट किया गया है। पाक्षिक श्रावक की चर्चा कैसी होनी चाहिए यह विषय छठे अध्याय का है। सातवें में सामायिक प्रतिमा के स्वरूप को सांगोपांग समझाया गया है। आठवें अध्याय में पण्डित आशाधर जी ने सागार श्रावक का लक्षण कर सागार को उपसर्ग सहिष्णु होना चाहिए, ऐसा बतलाकर विस्तार से समाधिमरण की महत्ता का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार सागारधर्मामृत के आठों अध्यायों में श्रावक धर्म के सभी पक्षों पर सुन्दर विवेचन मिलता है। यथार्थ में यह रचना श्रावकों के लिए धर्मरूप अमृत ही है।

17. धर्मसंग्रह श्रावकाचार

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान पण्डित मेधावी ने अपने पूर्ववर्ती स्वामी समन्तभद्र, वसुनन्दि और आचार्य आशाधर की रचनाओं के आधार धर्मसंग्रह श्रावकाचार की रचना की है। सम्यकत्व का स्वरूप एवं उसकी महत्ता,

ग्यारह प्रतिमाओं तथा अष्टमूलगुणों का निरूपण, द्वादशव्रतों का वर्णन, समितियाँ, षट्कर्म, पूजनविधि तथा सल्लेखना का ग्रंथ में सम्यक् प्रतिपादन मिलता है। सूतक पातक पर प्रकाश डालना धर्मसंग्रह श्रावकाचार की अपनी विशेषता है।

18. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

पन्द्रहवीं शती के संस्कृतज्ञ आचार्य सकलकीर्ति ने 2880 श्लोकप्रमाण प्रश्नोत्तर श्रावकाचर की रचना की है, जो 24 परिच्छेदों में विभक्त हैं।

धर्म का महत्त्व, सम्यग्दर्शन और उसके विषयभूत सात तत्त्वों एवं पाप-पुण्य, सत्यार्थ देव गुरु धर्म, अष्टमूल, सप्तव्यसन, द्वादश व्रतों का निरूपण एवं 32 दोषों तथा ग्यारह प्रतिमाओं आदि का विस्तार से प्रतिपादन करना प्रस्तुत ग्रंथ का प्रमुख लक्ष्य है। सकलकीर्ति ने प्रत्येक श्रावक को अपने घर में जिनबिम्ब स्थापित करने पर भी बल दिया है।

19. गुणभूषण श्रावकाचार

जिनका समय अज्ञात है ऐसे आचार्य गुणभूषण ने पंडित आशाधर तथा आचार्य वसुनन्दि से प्रभावित होकर त्याग आदि गुणों की महत्ता को यथार्थतया समझकर श्रावकों के कल्याण के लिए प्रकृत श्रावकाचार की रचना की है, जिसमें मनुष्य-भव एवं सद्धर्म इस कलिकाल में अतिदुर्लभ है ऐसा बतलाकर सम्यक्त्व की महिमा को भेद तथा अंगों के साथ स्पष्ट किया गया है। इसके अलावा सम्यग्ज्ञान का लक्षण, उसके पाँचों भेद, सात तत्त्व, द्वादशव्रतों, ग्यारह प्रतिमाओं, विनय, वैयावृत्त्य, पूजन और पिंडस्थ आदि ध्यानों का प्रतिपादन भी आचार्य गुणभूषण ने अपने श्रावकाचार में किया है।

20. धर्मोपदेश पीयूषवर्ष श्रावकाचार

आराधनाकोश आदि ग्यारह ग्रंथों के प्रणेता, 16वीं शताब्दी के आचार्य ब्रह्मनेमिदत्त ने पाँच अधिकारों वाले श्रावकाचार की रचना की है, जो सचमुच पीयूषवर्ष है। अपनी श्रावकधर्म विषयक रचना में ब्रह्मनेमिदत्त ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप, पच्चीस दोषों के दुष्परिणाम, सम्यग्दर्शन, आठमूल गुणों, बारह व्रतों, मंत्रजाप, जिनबिम्ब एवं जिनमंदिर का निर्माण के फल का विवेचन कर ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण किया है।

आचार्य ब्रह्मनेमिदत्त रत्नकरण्डश्रावकाचार, वसुनन्दि श्रावकाचार, गोम्मटसार जीवकाण्ड, सावयधम्मदोहा, यशतिलकचम्पू, द्रव्यसंग्रह और एकीभावस्तोत्र आदि कृतियों से प्रभवित लगते हैं।

21. लाटी संहिता

लाटी संहिता अपर नाम श्रावकाचार के लेखक आचार्य राजमल्ल हैं, जिनका समय विक्रम की सत्तरहवीं शदी का मध्य भाग बतलाया गया है।

आचार्य राजमल्ल ने लाटी संहिता के अतिरिक्त पाँच अन्य ग्रंथों की भी रचना की है वे हैं-स्वामी जम्बुचरित, अध्यात्मक कमलमार्तण्ड, पिंगलशास्त्र और पंचाध्यायी। पंचाध्यायी की रचना आपसे पूर्ण नहीं हो सकी थी, फिर भी सिद्धान्तों विशेषकर नयसिद्धान्त के प्रतिपादन में यह बेजोड़ है।

लाटी संहिता में सात अधिकार हैं। जिनमें अष्टमूलगुणों का उपार्जन, सप्त व्यसनों का त्याग, सम्यग्दर्शन की सांगोपांग महिमा, अणुव्रतों, गुणव्रतों एवं शिक्षाव्रतों के भेदों के साथ सल्लेखना का वर्णन किया गया है। द्वादश तपों का निरूपण तथा एकादश प्रतिमाओं के स्वरूप पर प्रकाश डालना भी प्रस्तुत श्रावकाचार का विषय है।

22. उमास्वामी श्रावकाचार

इस कृति के रचयिता भट्टारक श्री उमास्वामी हैं, तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति नहीं। यह 16वीं-17वीं शती की रचना है कारण कि इसकी भाषा शैली अत्याधुनिक है। दूसरे ग्रंथकर्ता पर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि, सोमदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि आदि विज्ञों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

ग्रंथकार ने अपने श्रावकाचार में धर्म एवं सम्यक्त्व की सांगोपांग विवेचना कर देव पूजा आदि श्रावक के षट्कर्त्तव्यों एवं पूजन के शुभफलों का प्रकाशन तप, दान, यथार्थ ज्ञान एवं चारित्र का वर्णन आठमूलगुणों, बारह उत्तरव्रतों, सल्लेखना तथा सप्त व्यसनों के त्याग पर बल देकर श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया है।

सौ वर्ष से अधिक प्राचीन भी प्रतिमा पूज्य है (श्लो० 108), प्रातःकाल पूजन कपूर से, मध्याह्न में पुष्पों से और संध्याकाल दीप धूप से करना चाहिए (श्लो० 125-126), फूलों के अभाव में पीले अक्षतों से पूजन करना चाहिए, अभिषेकार्थ दूध के लिए गाय रखना, जल के लिए कुआं खुदवाना और पुष्पों के लिए बगीची बनाना चाहिए (श्लो० 133), आदि। विधि-नियमों को श्रावकाचार में पालने की श्रावकों को प्रेरणा दी गई है। यही इसकी विशेषता भी है।

23. पूज्यपाद श्रावकाचार

प्रस्तुत श्रावकाचर की रचना किसी अज्ञात कवि ने ख्याति प्राप्त करने की दृष्टि से पूज्यपाद देवनन्दि के नाम से की है जिस पर पूर्व रचित कतिपय श्रावकाचारों का प्रभाव दिखलायी देता है।

ग्रंथ में कुल 103 श्लोक हैं और विषय है–सम्यक्त्व का स्वरूप तथा उसका माहात्म्य बतलाना एवं आठमूलगुणों का वर्णन करना। अभक्ष्य पदार्थों का निषेध, सप्तव्यसनों का त्याग, दान-दानफल, जिनपूजन की महिमा वर्णन, रात्रि भोजन करने के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालना भी इसी श्रावकाचार का विषय है।

24. व्रतसार श्रावकाचार

यह भी अज्ञात लेखक की लघुकाय रचना है जिसमें एकमात्र 22 श्लोक हैं। दो प्राकृत गाथाएँ भी इसमें शामिल हैं। इस पर आचार्य समन्तभद्र स्वामी के रत्नकरण्डश्रावकाचार का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि का भेद, अष्टमूलगुणों का निर्देश, अगालित जलपान तथा अभक्ष्य पदार्थों का निषेध, द्वादश व्रत स्वरूप, हिंसक पशु-पक्षी पालन निषेध आदि पर इस ग्रंथ में प्रकाश डाला गया है। यहाँ श्रावकों को जीर्णशीर्ण जिन चैत्यालयों जिनमंदिर के उद्धार करने की भी प्रेरणा दी गई है।

25. व्रतोद्योतन श्रावकाचार

16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विद्यमान आचार्य अभ्रदेव विभिन्न मत मतान्तरों के अच्छे ज्ञाता थे, जिन्होंने 542 श्लोक परिमाण वाले श्रावकाचार की कवित्वपूर्ण एवं प्रसाद गुण सम्पन्न विविध छन्दों में रचना की है।

प्रस्तुत श्रावकाचार व्रतों का उद्योत करने वाला है। यहाँ शरीर शुद्धि, जिनबिम्ब दर्शन एवं पूजन पर अधिक बल दिया गया है। इसके पश्चात् अभक्ष्यभक्षण, कषायों, पंचेन्द्रिय विषया और सप्त व्यन सेवन के दुष्फलों पर भी प्रकाश डाला है। श्रावक के 12 व्रतों, सल्लेखना, ग्यारह प्रतिमाओं तथा बारह भावनाओं का वर्णन करना भी इसी रचना का विषय है। इसके बाद इसी ग्रंथ में पाक्षिक, नैष्ठिक साधक का स्वरूप, अणु-परमाणु का स्वरूप, आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि, अनशन तप का स्वरूप तथा सामायिक एवं वन्दना के बत्तीस दोषों और सम्यकत्व की महिमा का निरूपण भी किया गया है।

26. श्रावकाचार सारोद्धार

वर्धमान चरित, अनन्तव्रतकथा, भावनापद्धति तथा पार्श्वनाथ स्तवन की रचना करने वाले आचार्य पद्मनन्दि द्वितीय विक्रम की चौदहवीं शती के विद्वान् थे। आपने वासाधार नाम के गृहस्थ के कल्याणार्थ श्रावकाचार सारोद्धार ग्रंथ की रचना की।

रचना के मंगल पाठ में आचार्य पद्म नन्दि ने कुछ एक प्रमुख तीर्थंकरों, गौतम गणधर एवं सरस्वती को नमस्कार करते हुए अपने से पूर्ववर्ती प्रभावी आचार्यों को सादर स्मरण किया है। इन आचार्यों में कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलंक, वीरसेन और देवनन्दि प्रमुख हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य पद्मनन्दि भी अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों से प्रभावित हैं।

श्रावकाचार सारोद्धार के प्रारम्भ में सम्यग्दर्शन के आठों अंगों का वर्णन करते हुए आठ मूल गुण, बारह व्रत, सल्लेखना की विधि आदि का क्रमशः वर्णन किया गया है। अन्त में सात द्यूतादि व्यसनों के सेवन से होने वाले दोषों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में श्रावकाचार का सार वर्णित है।

27. भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययन

भव्य जीवों को उपासना करने योगय धर्म का उपदेश जिस ग्रंथ में उपलब्ध होता है, उस भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययन के कर्त्ता आचार्य जिनदेव विक्रम की 16वीं सदी के विद्वान् विशेष हैं।

उक्त श्रावकाचार में छह परिच्छेद हैं जिनमें ग्यारह प्रतिमाओं के माध्यम से अष्ट मूल गुणों का पालन, रात्रि-भोजन एवं सप्तव्यसन सेवन का त्याग, जीवादि तत्त्वों का विवेचन, बारह व्रतों और सल्लेखना का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

28. पंच विशतिकागत श्रावकाचार

विक्रम की 12वीं शताब्दी के आचार्य पद्मनन्दि प्रथम ने 26 (लघुकाय) ग्रंथों की रचना की है, जो पंचविंशतिका के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उपासक संस्कार प्रकरण ही श्रावकाचार है, जिसमें आचार्य पद्मनन्दि ने सद्गृहस्थ के षट् आवश्यक कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए दान एवं सामायिक की महत्ता बतलाकर सप्तव्यसन सेवन परित्याग पर अधिक बल दिया है। अनन्तर द्वादश व्रतों का पालन, वस्त्र गालित जलपान और रात्रि भोजन त्याग का उपदेश दिया गया है। विनय शीलता मोक्ष का द्वार है, दया धर्म का मूल है, बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन तथा क्षमादि दश धर्मों का

यथाशक्ति श्रावक को अनुपालन करना चाहिए, इत्यादि विषयों पर सम्यक् प्रकाश इसी ग्रंथ में डाला गया है।

29. प्राकृत भावसंग्रहगत श्रावकाचार

दर्शनसार, आराधनासार, लघुनयचक, आलापपद्धति एवं तत्त्वसार आदि ग्रंथों के रचयिता आचार्य देवसेन ने गृहस्थ धर्म पर अपनी अनुपम कृति भावसंग्रह में विस्तृत चर्चा की है। विद्वानों ने आपका समय विक्रम की दसवीं शती का अन्तिम चरण तथा ग्यारहवीं शती का प्रथम चरण बतलाया है।

प्राकृत भावसंग्रह में चौदह गुण स्थानों को माध्यम बनाकर श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया गया है विशेषकर आचार्य देवसेन ने आठ मूल गुणों, बारह व्रतों, ध्यान, देवपूजा, जिनेन्द्राभिषेक, सिद्धचक्रयन्त्र, परमेष्ठीयंत्र आदि की आराधना आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। दान के प्रकार, उसका फल, पात्र-अपात्र निर्णय और पुण्य फल तथा भोगभूमि के सुखों का विवेचन करना भी इसी ग्रंथ का विषय है। इस तरह श्रावक के करणीय कर्त्तव्यों पर भावसंग्रह में सम्यक् प्रतिपादन मिलता है।

30. संस्कृत भावसंग्रहगत श्रावकाचार

विक्रम की 15वीं शताब्दी में विद्वान् पण्डित वामदेव ने प्रतिष्ठासूक्ति संग्रह, त्रैलोक्य दीपक, त्रैलोक्य सार पूजा, तत्त्वार्थसार, श्रुतज्ञानोद्यापन तथा मंदिरसंस्कार पूजन जैसे प्रौढ़ ग्रंथों की रचना की है।

श्रावक धर्म पर भी आपने संस्कृत भाषा में आचार ग्रंथ भावसंग्रह की रचना की, जिसका आधार प्राकृत भावसंग्रह है। आचार्य वामदेव ने भावसंग्रह में ग्यारह प्रतिमाओं को महत्ता देते हुए श्रावकों के लिए 12 व्रतों, देवपूजा, गुरुपास्ति, षट्कर्मों, दान, दानफल तथा भोगभूमि के सुखों को प्रतिपादित किया है।

31. पुरुषार्थानुशासन

प्रस्तुत पुरुषार्थानुशासन ग्रंथ के कर्त्ता पण्डित गोविन्द विक्रम की 16वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे।

पुरुषार्थानुशासन में कुल छह अवसर अथवा अध्याय हैं, जिनमें पुरुषार्थी श्रावक के आचरणीय धर्म का प्ररूपण किया गया है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य गोविन्द ने व्रत, शील, देव-शास्त्र गुरु

एवं धर्म का लक्षण बतलाकर सम्यक्त्व का स्वरूप एवं उसके आठ अंगों तथा त्याजनीय 25 दोषों की विस्तृत चर्चा की है।

आठ मूल गुणों, सप्तव्यसनों, रात्रि भोजन विरति, एवं ग्यारह प्रतिमाओं के स्वरूप को भी यहाँ प्रतिपादित किया गया है। धर्म, ध्यान तथा समाधिमरण की महत्ता का भी निरूपण अन्त में इसी रचना में मिलता है।

32. कुन्दकुन्द श्रावकाचार

यह रचना आचार्य कुन्दकुन्द की लिखित प्रतीत नहीं होती। किसी अज्ञात कवि ने जो भले ही कुन्दकुन्द नाम धारी ही क्यों न रहा हो, ख्यातिलाभ को दृष्टि में रखकर उपर्युक्त ग्रंथ की रचना की है जिसमें बारह उल्लास तथा 592 संस्कृत गाथाएँ हैं। इस ग्रंथ में अपने से पूर्ववर्ती श्रावकाचारों का सार प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा इसकी अपनी निम्न विशेषताएँ भी हैं जैसे–

1. पृथ्वी जलादि पंच तत्त्वों का वर्णन, 2. विभिन्न वृक्षों की दातुनों के विभिन्न प्रयोगों का निरूपण, 3. जिनप्रतिमाओं के मान-प्रमाण आदि का विधान, 4. खण्डित मूर्ति पूजन के दुष्परिणामों का प्रकाशन, 5. भूमि परीक्षा, 6. प्रतिमा काष्ठ पाषाण परीक्षा, 7. स्नान विधि, 8. तिथि, वार और नक्षत्रादि का विचार, 9. ताम्बूल भक्षण का फल, 10. कृषि एवं पशुपालन विधान, 11. व्यापारियों के हस्तांगुलि संकेतों का वर्णन, 12. स्वामि सेवक सम्बन्ध, 13. पुरुष के शारीरिक शुभाशुभ लक्षणों एवं 14. वधु के शारीरिक शुभाशुभ लक्षणों का प्रकाशन, 15. विषकन्या का स्वरूप, 16. विभिन्न ऋतुओं में स्त्री सेवन का काल विधान, 17. छहों ऋतुओं में आहार-विहारादि का प्रतिपादन कुन्दकुन्द श्रावकाचार में किया गया है। साथ ही वात्स्यायन एवं वाग्भट्ट जैसे कवियों तथा मनुस्मृति एवं महाभारत आदि जैनेत्तर ग्रंथों का इस श्रावकाचार में उल्लेख किया हुआ मिलता है। इस दृष्टि से भी यह रचना अति आधुनिक सिद्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन वाङ्मय में गृहस्थधर्म पर लगभग अब तक 46 ग्रंथों की रचना हुई है, जिन्हें निम्न तीन विषयगत वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. ग्यारह प्रतिमाओं को आधार बनाकर लिखे गए श्रावकाचार,
2. बारह व्रत और सल्लेखना प्रधान श्रावकाचार,
3. पक्ष, चर्या तथा साधन को प्रमुखता देने वाले श्रावकाचार।